

सामान्य जन-जीवन को संक्रमित करता 'कोरोना काल'

बीज शब्द :

कोरोना, प्रौद्योगिकी, मानवीय संवेदना, सामान्य जीवन, सांप्रदायिकता

21वीं सदी में कोरोना महामारी मानव जाति के समक्ष बड़ी चुनौती है, जिसने मानव जीवन को सस्ता और जिंदगी जीना महंगा कर दिया है। मेडिकल साइंस की आशातीत तरक्की के बावजूद यह समस्या आम जन-जीवन को संक्रमित कर रही है। इस विकट परिस्थिति में ईश्वर-अल्लाह-गॉड के किवाड़ तो बंद हैं लेकिन साम्प्रदायिकता के दंगे रोज जारी हैं। ऐसे में आधुनिक सोच की सीमा स्पष्ट नजर आने लगी है। इस संकटकालीन स्थिति में समस्त मनुष्यों का एक ही धर्म और एक ही कर्म है 'मानव जाति की रक्षा।'

गंगा कोइरी

सहायक प्राध्यापक (डब्ल्यू. बी. ई. एस.
हिंदी विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ एजुकेशन (सी.टी.ई.),
बानीपुर, उत्तर 24 परगना, (प. बं.)

सामान्य जन-जीवन को संक्रमित करता 'कोरोना काल'

दिसंबर 2019 से पहले का दौर मानव इतिहास में भूमंडलीकरण या इक्कीसवीं सदी के नाम से विदित था किन्तु वर्तमान में यह 'कोरोना काल' के नाम से जाना जा रहा है। इस कोरोना ने पूरे विश्व में सन्नाटा बुन दिया है और अब यह संकट विश्व पटल पर 'मानवीय त्रासदी' के रूप में उभर रहा है। इस त्रासदी ने सामान्य जीवन को बुरी तरह से तबाह कर दिया है। आबादी का एक बड़ा हिस्सा सामान्य जीवन ही व्यतीत करता है। आम भाषा में यह 'कामगार' वर्ग है। इस कामगार वर्ग में किसानों करने वालों से लेकर दिहाड़ी मजदूर, ठेले-रिक्शेवाले, बोझा ढोने वाले, कचड़ा बिंधने वाले आदि हैं। यह गंभीर महामारी इनके वर्तमान जीवन में पिछले कई महीनों से इस कदर हावी है कि ये सामान्य लोग मौत के साए तले जिंदगी तलाशने को विवश हो रहे हैं। इस विकट घड़ी में यातायात के सारे साधन बंद हैं। कहीं रेलवे के विरामस्थल में लाखों श्रमिकों का हुजूम रहा तो कहीं निराश-हताश पैदल, साइकिल सवार श्रमिकों की कतारें। महानगरों में जीविका तलाशने वाला यह वर्ग दिशाहीन स्थिति से निजात पाने के लिए अपने कस्बे-गाँवों की ओर लौटने के लिए मशक्कत करता हुआ अपने घर तक लौटा लेकिन अपने परिवार एवं बच्चों के दो वक्त की रोटी के लिए उसे फिर से उसी पश्चिमी देशों के इशारे पर अपने देश की शहरों और फैक्ट्रियों की ओर कदम बढ़ाने पड़ रहे हैं। के. एस. चलम की पंक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है। "भारत में नागरिक समाज के पास अपना कोई एजेण्डा नहीं है, जो हमारी स्थिति और लोकाचार के लिए प्रासंगिक हो और ये विदेश से अपने जनादेश की व्युत्पत्ति कर रहा है।"¹

कोरोना के इस मंजर में कहीं बेबसी और मायूसी है तो कहीं हँसी और ठहाके का मिला-जुला रूप, जो सिक्के की दो पहलू की तरह जीवन को कहीं रंगीन तो कहीं रंगहीन बना रही है। एक ओर इस लॉकडाउन में सुविधा-संपन्न वर्ग अपने घर की दिवार पर लगी बड़ी स्क्रीन पर परिवार समेत गृहबंदी समय का लुप्त उठा रहा है, वहीं दूसरी तरफ इसी गृहबंदी जीवन तले बच्चों का बचपन, बुजुर्गों की बैठकें, औरतों की गप्पे और पुरुषों के अड्डे बाजियाँ कोरोना के आतंक से दम तोड़ रही है। इस महामारी ने संक्रमण का जाल केवल मनुष्य मात्र के शरीर पर ही

नहीं फैलाया बल्कि मनुष्य का मन भी इस कदर संक्रमित हो गया है कि पृथ्वी के समस्त प्राणी संशय की आगोश में साँसे ले रहे हैं। विश्व स्तर पर सभी देश इसे खत्म करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं पर हर दिन हजारों-लाखों जानों का जाना मानवता की शिकस्त बनकर सितम ढा रही है। इस महामारी से भविष्य धुंध में नजर आ रहा है। हर देश की सरकार अपने सामर्थ्य के अनुरूप इस महामारी से जंग लड़ रही है। लेकिन यह हर रोज एक नई चुनौती के साथ मानव-जीवन को निगल कर अट्टहास कर रहा है। बार-बार और लगातार ऐसी स्थितियाँ बन रही हैं कि परिजन अपने सगे-सम्बन्धियों के दाह-संस्कार तक नहीं कर पा रहे हैं। ऐसी विडंबना भारत सहित विश्व के अनगिनत देशों की भी है, जिससे उनके संस्कृति-संस्कार प्रभावित हो रही है।

प्रौद्योगिकी एवं भौतिक संसाधनों के दम पर जीने वाला मानव लॉकडाउन या अनलॉक की स्थिति में अपनी पेट की ओर ताकते हुए झोली उठाए सबसे पहले अन्न के लिए दौड़ रहा है। यह कहना अनुचित न होगा कि संक्रमण की घड़ी में किसान 'कोरोना वारियर्स' का अहम हिस्सा है। मौसम की जंग हो या कोरोना का संघर्ष किसान का हल क्वॉरन्टीन् नहीं हुआ। वह जीवन-मृत्यु से परे अन्न उगाए जा रहा है। इस सन्दर्भ में कमल नयन काबरा की उक्ति समीचीन प्रतीत होती है। "आज हजारों उपक्रम बंद हो चुके हैं। कृषि की हालत ठीक नहीं है। 70 प्रतिशत भारतवासियों को आवश्यकता से कम भोजन मिल रहा है, जबकि औसत खाद्य उत्पादन का चौथाई हिस्सा गोदामों में पड़ा खराब हो रहा है। लोग भूख, गर्मी, सर्दी तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण मर रहे हैं।"²

उपेक्षित जन-समुदाय के लिए परिस्थितियाँ हरदम प्रतिकूल ही बनी रही है और नीति-निर्धारकों के लिए अर्थव्यवस्था का संरक्षण शीर्ष पर रहा है। उत्पादन मूल्यवान बने हुए हैं लेकिन इससे जुड़े उत्पादक मूल्यहीन नजर आते हैं। ऐसा न होता तो इस लॉकडाउन की स्थिति में उसके अनाजों का मंडियों तक न पहुँचना उनके जीवन पर दोहरा संकट खड़ा न करता। किसान की उम्मीद उसकी फसल होती है। भारत में किसानों की स्थिति पहले से ही बदहाल है। खेत से बाजार तक का सफर इस पूर्णबंदी में उनके

माथे पर एक नया बोझ और उनकी जमीन को बंजर बनाने जैसा है, रणविजय सिंह ने लिखा है। “नाबार्ड की रिपोर्ट के आधार पर अगर हम किसानों की सालाना आय देखें तो ये करीब 1 लाख 7 हजार होती है। ये एप्पल कंपनी के एक फोन की कीमत के बराबर है। ऐसे में आप समझ सकते हैं कि किसान की सालाना आय कितनी कम है। इंडिया स्पेंड की रिपोर्ट में कहा गया कि पिछले पाँच सालों में किसानों की मासिक आय में खेती, उत्पादन, पशु धन से होने वाली आय का हिस्सा अनुपातिक रूप से कम हुआ है। इस वजह से किसान कर्ज लेने को मजबूर है।”³

विकास की इस गति में इन आंकड़ों से किसानों की दुर्बल स्थिति का पता चलता है। पूरे देश के लिए अन्न उगाने का दायित्व किसान के माथे होता है। साथ ही अपने परिवार समेत मवेशियों के पेट भरने की जिम्मेदारी भी उसके कंधे पर होती है। कृषकों का संघर्ष असीम है। लॉकडाउन के कारण पैदवार की कटाई में दिक्कतें आ रही हैं। कोरोना वायरस के कारण एक ओर सोशल डिस्टेंसिंग बनाए रखने की मजबूरी में खेतिहर मजदूरों की जगह हार्वेस्टिंग मशीन का प्रयोग कर कटाई पर खर्च की बढ़त हो रही है, वहीं दूसरी तरफ उससे निकलने वाले भूसे की कमी से किसान पिस रहा है। कोरोना महामारी ने किसानों के खेत तक पैर पसार लिया है। मशीनों से फसलों की कटाई से किसानों पर आश्रित मजदूरों से उनकी दो जून की रोटी भी छिनती जा रही है। इसके अतिरिक्त साधारण जन-जीवन के व्यापक दायरे में किसान एवं मजदूरों के साथ-साथ विकलांग, भिक्षुक, किन्नर तथा वेश्याएँ भी शामिल हैं, जो देश-काल तथा समाज के उजले दायरे से बाहर हैं। लेकिन भूख के संघर्ष में वे भी शामिल हैं और कहीं न कहीं इस रेस में वे बहुत पीछे छूटते नजर आ रहे हैं।

नित-नूतन अविष्कार हमारे मन को चमत्कृत कर रहा है। आधारभूत आवश्यकताओं से ऊपर उठकर भी हमारी लालसाएँ थमने का नाम नहीं ले रही हैं। लेकिन हमारा अस्तित्व आधुनिकता की सीमा लाँघकर अत्याधुनिक होने के बावजूद भी कोरोना के समक्ष बौना नजर आ रहा है। निःसंदेह, इस संक्रमण से निपटने के लिए राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर नए-नए नीति एवं योजनाएँ बनाई जा रही हैं, जो सहज ही हम तक पहुँच रही हैं लेकिन इसकी तत्परता एवं प्रयोजनीयता भी चिंतन का विषय है। डॉ.

रामगोपाल अग्रवाल का मानना है। “सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का विकसित होना शासन में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण आधार बन चुका है तथा इसकी क्षमताओं का सम्पूर्ण उपयोग अवश्य ही करना चाहिए। हालाँकि, यह मात्र उसी सीमा तक कार्य करेगा जहाँ तक प्रशासनिक व्यवस्था को उसका उपयोग किए जाने हेतु तैयार किया गया हो।” इन्हीं सीमाओं के कारण इन योजनाओं की धजियाँ भी उड़ रही हैं। चहुँओर ‘आरोग्य सेतु’ से सावधानी बरतने और ‘सोशल डिस्टेंसिंग’ के जरिये ‘जियो और जीने दो’ जैसे विचार बुलंद किये जा रहे हैं, वहीं दुलमुल अर्थव्यवस्था को शराब के राजस्व से दुरुस्त बनाने का सरकारी फैसला गुड़-गोबर जैसा प्रतीत हो रहा है! विविधता के इस देश में साम्प्रदायिकता मानवता को शर्मसार कर रही है परशराब की कतारों में साम्प्रदायिकता के हथियार धर्म-जाति, लिंग-रंग- वर्ण-वर्ग आदि निरस्त नजर आ रहे हैं। रोजमर्रा के जीवन में इस विषाणु ने सांप्रदायिकता के संक्रमण को और बढ़ा दिया है। आज ‘सब्जी बेचने वाले’ से लेकर ‘डेलिवरी बॉय’ से उसकी जाति और धर्म पूछ कर सामान खरीदने का चलन शुरू हो गया है। समाज की ये रुग्ण तस्वीरें आधुनिक मानसिकता पर ग्रहण के समान हैं, जिसपर रोक नहीं लगी तो यह तस्वीरें और भी भयावह हो जायेंगी।

असल में, युग चाहे कोई भी हो, संघर्ष की घड़ी में हम ईश्वरीय शरण ही स्वीकार करते हैं और तब ऐसा महसूस होता है कि हमारी आधुनिक, वैज्ञानिक सोच तथा विचारधाराएँ भी सुप्त हो गई हैं। सुप्रीम पाँवर कहे जाने वाले देश के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप द्वारा वाइट हाउस में शांति पाठ करवाना इसका उत्तम उदाहरण माना जा सकता है। विश्व के तमाम देश अपने स्तर पर कोरोना को परास्त करने में लगे हैं। ऐसे में अमेरिका का यह कदम कहीं न कहीं ईश्वरीय सत्ता को वैज्ञानिक तर्क-वितर्क से अधिक विश्वसनीय एवं उच्च स्थान देना है। इस समस्यापूर्ण परिस्थिति में भारत भी सारे वैज्ञानिक टोटको को अपना कर धर्म के छावनियों को बंद रखते हुए इस पारम्परिक प्रार्थना पद्धति पर आस्था टिकाये है। आस्तिक मनोवृत्ति के कारण साम्प्रदायिकता की संकीर्ण मानसिकता हमारे भीतर जड़ जमाये है, जो कभी ‘जमाती’ तो कभी ‘पालघर’ का मजहबी जामा पहने हमारे समक्ष मानवीय संवेदनाओं को घायल कर रही है। कोरोना जाति या ध

मं देखकर नहीं आता फिर भी हम जाति-धर्म और सम्प्रदाय का चादर ओढ़े हुए हैं। देश में दलगत राजनीति के बुते साम्प्रदायिकता को बैशाखी बनाकर 'मनुष्य धर्म' के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। जे. पी. सिंह की उक्ति है। "धर्म को मानने में रूचि कम और जानने में रूचि अधिक हो गई है। धर्म का प्रयोग व्यक्तिगत शांति, दार्शनिक चिंतन या राजनीतिक लाभ के निमित्त भी किया जा रहा है।"⁵ प्रश्न है कि क्या सारे के सारे शोध एवं अविष्कार इसीलिए हुए थे कि निष्कर्ष के रूप में हम इस कोरोना काल में उन्हीं सांप्रदायिक रूढ़ियों का दामन थामे, जिन्हें काटने के लिए हमने इतना प्रयत्न किया। आज के दौर में मनुष्य अनावश्यक संसाधनों से संपन्न है। अत्याधुनिकता का दंभ भरने वाले लोग अक्सर पचास वर्ष पीछे का हवाला देते हुए इसे आज से तुलना कर वर्तमान को ज्यादा प्रगतिशील मानते हैं। लेकिन हकीकत तो यह है कि आज से पचास वर्ष पूर्व अत्याधुनिकता का वह आधार नहीं था, जो वर्तमान में है। इसके बावजूद विज्ञान की आड़ में हम संप्रदाय के पाश से मानवीयता को चोटिल कर रहे हैं। जबकि यह प्रमाणित सत्य है कि संसार का कोई भी धर्म 'अधर्म और शत्रुता' का पाठ नहीं पढ़ाता। लेकिन न जाने क्यों हम इस सार्वदेशिक महामारी में सांप्रदायिकता के खड़ग से अमानवीय कृत्यों को करने से बाज नहीं आ रहे हैं।

इस कोरोना ने आम जन-जीवन पर दीर्घकालिक प्रभाव डाला है। कोरोना काल ने हमारे उत्तर कोरोना काल पर एक बड़ा-सा विराम लगा दिया है, जिस कारण वर्तमान और भविष्य गंभीर चुनौतियों से घिरी नजर आ रही है। इस भयावह संकट से उबरने के सन्दर्भ में युआल नोआह हरारी का कथन महत्वपूर्ण है। "प्रत्येक राष्ट्र के स्तर पर भी हमारे सामने विकल्प मौजूद हैं। सर्वधिकार संपन्न केंद्रीकृत निगरानी व्यवस्था (पूरी तरह सर्विलेंस व्यवस्था) और सामाजिक एकजुटता वाले नागरिक सशक्तीकरण में से एक को चुनना है।"⁶

बेशक, उत्तर कोरोनाकाल में इन विकल्पों के चुनाव एवं परिणाम अवश्य नजर आएंगे। लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों का तकाजा यह है कि आर्थिक मंदी के कारण न केवल भारत बल्कि विश्व के अन्यान्य विकसित देश भी इस क्षति से अछूते न रह पाएंगे। प्रथम विश्व युद्ध एवं द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात्

जिस प्रकार विश्व आर्थिक मंदी और महंगाई का शिकार हुआ था बिल्कुल वही स्थिति पुनरुक्ति प्राप्त करने की दिशा में है। देश सा माजिक-आर्थिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक संकट के दौर से गुजर रहा है। विश्व की एक तिहाई जनता गृहबंदी होने को मजबूर है। देश की रीढ़ 'अर्थव्यवस्था' बुरी तरह से टूट रही है। फलस्वरूप लाखों लोगों के रोजगार पर बन आई है। उनके वर्तमान में भविष्य को लेकर एक गहरी अनिश्चितता है। बावजूद इसके सर्वोच्च प्राथमिकता आज जीवन जीना नहीं बल्कि 'जीवन बचाना' है। नोबेल कोरोना संक्रमण ने अर्थव्यवस्था की नॉवेल्टी को बुरी तरह झकझोर दिया है। संपत्ति की कीमत और शेयर बाजार में लगातार उतार-चढ़ाव अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचा रहे हैं, ऐसे में जी.डी.पी. का ऋणात्मक हो जाना सामान्य जीवन को अप्रत्यक्षतः गहन रूप से प्रभावित करने की दिशा में है। जे. सी. चौधरी के अनुसार "वैश्विक अर्थव्यवस्था को 2020 में एक ट्रिलियन डॉलर का झटका लगेगा। यूएनसीटीएडी का मानना है कि भारत को कोरोना वायरस के प्रकोप के कारण 348 मिलियन डॉलर का घाटा होगा। दुनिया में लगभग 25 मिलियन नौकरियों पर गाज गिरेगी।"⁷

कोरोना काल के अंतिम सफर के बाद का समय आम जन-जीवन के लिए और अधिक कठिन और तनावपूर्ण होने वाला है क्योंकि कोरोना के अंतिम छोर से दुनिया की नयी तस्वीर संकुचित और स्वार्थपूर्ण नजर आएगी। हर देश अपनी गिरती आर्थिक अवस्था को सुदृढ़ करने की रफ्तार में आम जीवन के सीमित ढाँचे को कहीं न कहीं और सिकोड़ने का प्रयास करेगा, जिससे मजदूरों और मजलूमों का भविष्य और अधिक विषमताओं से घिरता नजर आएगा। इतना स्पष्ट है कि इस गम्भीर परिस्थिति के उत्तरकाल में सामान्य जन-जीवन की समान्यता पूरी तरह असामान्य बन सकती है। आश्चर्य की बात है कि आर्थिक दृष्टि से विश्व स्तर पर तेजी से उभरते भारतमें वर्ण-वर्ग और लिंग की विषमता का ग्राफ भी उतनी ही तीव्रता से विकासमान रह रहा है। लाखों-करोड़ों के लुभावन पैकेज भर से स्थितियाँ तब तक तंदरुस्त नहीं होंगी जब तक सुविधा को दरकिनार कर आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग नहीं किये जायेंगे। अमूमन, लॉकडाउन के पश्चात रोजगार के क्षेत्र में सरकारी एवं प्राइवेट नौकरियों की किल्लत होगी।

मौलिक अधिकारों के तहत स्व रोजगार के विकल्प तो होंगे लेकिन निजी करण और पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप के कारण महंगाई की मार पर नियंत्रण करना सहज न होगा। कोरोना ने 'शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा' पर फिर से सोचने के लिए विवश किया है। ये विचारणीय मुद्दे उत्तर कोरोना काल के प्रबुद्ध भारत में सामरिक दृष्टि से एक नए संकल्प के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होंगे। इस संबंध में डॉ. सौमित्र चक्रवर्ती (सी.ई.ओ., इनोवेटिव फाइनैसियल एडवाइजर्स प्राइवेट लिमिटेड) का भी मानना है। "when we started our relief work we realized] it was nothing like we've ever witnessed before] the under privileged community was living under constant economic & social distress created pandemic- We knew the situation demanded collaborative action & ramping up our response was the only way forward]"⁸ उपरोक्त कथन के परिपेक्ष्य में देखना यह है कि इन संकल्पों के साथ देश का हर वर्ग एकजुट होकर एक ही साँचे में ढलकर मानव मूल्यों और मानवाधिकारों की रक्षा करते हुए संप्रदाय विहीन होकर क्या सामान्य जन-जीवन को एक बेहतर भविष्य दे पायेगा? परिस्थिति चाहे जितनी भी विकट हो, चाहे हम घरों में दुबककर बाहरी परिवेश से कटकर खुद को क्वॉरन्टीन् रख रहे हैं, फिर भी मन के किसी कोने में उम्मीद की एक लहर हिलोरे मार रही है कि एक न एक दिन ये सफेद कोटधारी कोरोना के इस महाजंग में जीत हासिल कर सम्पूर्ण मानव जाति को रोगाणुमुक्त जीवन का वरदान देंगे।



संदर्भ सूची

1. के. एस. चलम, आर्थिक सुधार और सामाजिक अपवर्जन भारत में उपेक्षित समूहों पर उदारीकरण का प्रभाव, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण। २०१७, पृ. १७२.
2. काबरा, कमल नयन, भूमंडलीकरण के भँवर में भारत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण - 2007, पृ. 114.
3. <https://www.gaonconnection-com/desh/nearly-52percent-of-farmers-have&debt-in&india&loan-waiver-2019-lok-sabha-polls-42994>
4. अग्रवाल, रामगोपाल, भारत २०५० : स्थायी समृद्धि की

योजना, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण ख २०१७, पृ. ८०.
५. सिंह, जे. पी., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन: २१वीं सदी में भारत, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण। २०१९, पृ. ४३५.

6. <https://www.bbc.com/hindi/international-52243699>

7. <https://www.jagran.com/editorial/apnibaat&covid-19-will-change-the-face-ofworld-jagran-special-52243699-html>(retrived on 02/07/2022)

8. <https://www.aninews.in/news/business/finnovation-impacts-amillion-lives-amid-coronavirus-pandemic20200611180731>(retrived on 20/08/2020)